

उत्तर

विजय मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

भूमिका उत्तर

राजकिशोर मिश्र साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

अध्यक्ष -भारती परिषद्

प्रकाशक

अमरनाथ जैन, प्रधानमंत्री

फानपुर जैन मठ

मुद्रक

सुमन प्रेस सतरजी मुहाल,

फानपुर

# जैन धर्म : एक परिचय

लेखक

विजय मुनि शास्त्री साहित्यरत्न

卐

प्रकाशक

अमरनाथ जी जैन, प्रधानमंत्री

कानपुर जी १ सप

## आदर्श जीवन •

धर्मों में हो तेज,

तेज में सत्य, सत्य में श्रद्धा ।

वाणी में हो श्रद्धा,

श्रद्धा में विनय, विनय में श्रद्धा ॥

—मुक्त चिन्तक

## आदर्श अहिंसा :

प्रगति राष्ट्र के जीवन तरु की,

है उद्योग-प्रगति पर निर्भर ।

किन्तु वही उद्योग हितकर,

जिसमें बड़े अहिंसा-निर्भर ॥

## सर्वोदय का गान :

विरम शान्ति अनेकान्त-रथ,

सर्वोदय का प्रतिफल गान ।

मैत्री करुणा सब जीवों पर,

जैन धर्म जग ज्योति महान् ॥

— उपाध्याय अमरमुनि

## आमुख

किसी धर्म के व्यापक प्रसार तथा लोक-जीवन में उसकी प्रतिष्ठा करने के लिए उसके स्वस्थ स्वल्प का निरन्तर करने वाले विवेचनात्मक साहित्य के निर्माण की निरन्तर आवश्यकता होती है।

इस उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए सांस्कृतिक चेतना के अपभ्रंश करिहाली श्री अमरचन्द्र जी महाराज के कानपुर-घातुमांस के अधमर पर गम्भीर श्रेयता श्री विजय मुनि जी महाराज द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन जैन धर्म के प्रचार के अभिप्राय से किया गया एक सफल प्रयत्न है।

वामन में कानपुर में उपाध्याय भी का घातुमांस समस्त स्थानवासी जैन समाज के लिये अत्यन्त गौरव की बात सिद्ध हुई है। समूचे घातुमांस में आपने न केवल अपने मार गभिन एव तत्परदर्शी प्रयत्नों द्वारा सभी जैन अधिका

अजैन भोताओं को मन्त्र-मुग्ध करके धार्मिक चेतना सम्पन्न यातावरण का निर्माण ही किया है, अपितु उर्ध्वमना जिज्ञासु श्रवकों के हृदय में अहिंसा और सत्य का बीजारोपण एवं पल्लयन भी किया है।

मुनि श्री जैन जगत् के उन ग्याति लब्ध मूर्धन्य सतों में से एक हैं, जिनका मूल उद्देश्य प्राणवान् आदर्शों का स्थापना एवं जन कल्याण के निमित्त अहिंसा और सत्य का मजल लेकर साधना पथ पर अडिग, अटूट निष्ठा के साथ अमसर होते रहना है। आपकी साधना "सत्य, शिव और सुन्दर" का सर्जन करने वाली प्रेरणा से सजलित है। अतस्तल की गहनता में अनुभव के फल पर जिस अलौकिक सत्य का साक्षात्कार आपने अपने जीवन में किया है, मानव मङ्गल के निमित्त यही प्रतिदिन प्रवचन के ध्यान से हृदय की घाखी के रूप में प्रस्तुत होता रहता है। समन्वय प्रधान प्रवाहपूर्ण शैली में अपने अभिभाषणों द्वारा अतर्विभेक का मङ्गल प्रकाश निकीर्ण करते हुये युग की मलीनता को विनष्ट करने का आप सजग प्रयास करते रहते

है। आत्म चिन्तन द्वारा प्राप्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति एवं मत्स्य का दिव्य प्रकाश आपके प्रगटन का नव्य और मेरु-दृष्ट है।

कवि भी का व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं धनु-सुर्गी है। आप हृदय से भाव प्रवण कवि, मस्तिष्क से गहन चिंतक एवं उदात्त विचारक, आंगार से संयम पून माधक और व्यवहार से निरद्वल सन्त हैं।

अनेक चिन्तन प्रगटन प्रयोगों का प्रणयन करके भारतीय राष्ट्र-मय को यथेष्ट समृद्ध करने का श्रेय भी आपको प्राप्त है। दार्शनिक भित्ति आपके माहित्य की आधार गिना है। काव्यात्मक सरलेश, सरल अभिव्यक्तता, सासृष्टिचित्र विशेषमता एवं हृदयमाही मार्मिकता आपकी भाषा-शैली की विशेषतायें हैं।

संक्षेप में आपको प्रथम आपकी विचार-व्येत्तता एवं आरम साधना की साधार प्रतिभा है।

प्रस्तुत प्रथम 'जैन धर्म एक परिषय' के प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार भी विजयमुनि जी शास्त्री

उपाध्याय श्री द्वारा प्रशस्त साधना-पथ के कर्मठ पंडित हैं। आपकी भाषा सघन, सशक्त एवं परिष्कृत है। भाषों और विचारों के अनुरूप सुमगठित शैली में विषय का निदर्शन यड़ी कुशलता पूर्वक किया गया है। प्रौढ़ एवं प्रवाह-युक्त भाषा, व्यवस्थित वाक्य रचना, शब्द चयन में सतर्कता एवं समास शैली में विचार व्यंजना आपके वाग्निधान की विशेषतायें हैं।

। इस प्रकार के परिचयात्मक ग्रंथों में लेखक का यह दायित्व होता है कि वह भाव व्यंजना का ऐसा सरल एवं सुमोघ स्वरूप सम्मुद्र रखे जिसका आश्रय लेकर पाठक प्रतिपादित विषय की सम्यक् अनुभूति प्राप्त कर सकने में समर्थ हो सके। यह यद्वा अत्युक्ति न होगी कि चिंतन-प्रधान अभिव्यक्ति एवं सामंजस्यपूर्ण व्याख्या द्वारा मुनि श्री जी अपने दायित्व-निर्वहण में पूर्ण सफल सिद्ध हुये हैं। आपकी विचारशैली में नवीन एवं पुरातन का सङ्गम है। जैन वाङ्मय के आख्यानो के आधार पर भावनाओं का सजैनात्मक परिधान धारण किये हुये आपका एक कहानी समूह "पीयूष-घट"

नाम से विगत मास में प्रकाशित हुआ है। इन जीवन-स्पर्शी लघु-कथाओं में सामाजिक पतन की निवृत्ति के लिये आध्यात्मिक भाव शिल्पी जिह्वल सा प्रतीत होता है।

आपकी वाग्धारा गतानुगतिक मान्यताओं के भीतर ही संचरण नहीं करती, वरन् नव्य-तरङ्गी-न्नेप लिये हुये मौलिक भावभूमि पर भी प्रसरण करती हुई प्रतीत होती है। 'जैन धर्म एक परिचय' के उपक्रम में विषय प्रवेश की दृष्टि से लेखक ने जैन धर्म की प्राचीनता, जैन की परिभाषा और केन्द्रीय विचार उपशीर्षकों द्वारा विरति और विवेक की नींव पर समाधारित जैन धर्म की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना का सुक्ष्म उत्पन्न पूर्व पीठिका के रूप में प्रस्तुत करके पाठकों को वस्तु के प्रमुख विचार सघातों को हृत्पङ्कम करने की प्रेरणा प्रदान की है।

पुस्तक तीन प्रधान शीर्षकों (१) धर्म (२) दर्शन (३) संस्कृति, में विभक्त है।

धर्म में धर्म भावना की आधारशिला भावना-



विशुद्धि, उसके तीन प्रकार (१) अहिंसा (२) सयम (३) तप की नव सुस्कार-युक्त परिभाषायें, उनके शुद्ध स्वरूप तथा समाज, राष्ट्र और विश्व की प्रगति में इनके विकास की आवश्यकता एवं उपादेयता का कुशलतापूर्वक विश्लेषण किया गया है।

दर्शन में आत्मवाद के अन्तर्गत आत्मा का स्वरूप उसके प्रकार, कर्मवाद में कर्म की परिभाषा उसके भेद, कर्म बन्ध और कर्म क्षय के कारण तथा कर्मों का फल, अनेकान्तवाद, नयवाद और प्रमाणवाद के स्वरूप की व्याख्यायें व्यापहारिक और बोध-गम्य भाषा-शैली में प्रस्तुत की गई हैं।

संस्कृति में समन्वय भावना, गुण पूजा, समतावाद और नारी गौरव का सक्षिप्त निर्देशन तथा जैन धर्म के पर्वों पर प्रकाश डाला गया है।

परम्परा पोषित प्रशास्त्री के अनुसार प्रतिपाद्य विषय के पूरक स्वरूप ग्रन्थ के अन्त में उपसंहार का भी प्रकरण सलग्न है।

अनेक दृष्टि कोणा से पुस्तक का प्रणयन और प्रकाशन उपयोगी एवं सराहनीय है। अध्ययन शील जिज्ञासु पाठक इससे लाभान्वित होंगे। आशा है, हिन्दी के परिचय-भूमिका सम्बन्धी साहित्य में यह अपना निश्चित स्थान अवश्य घना लेगी।

पुस्तक को धर्म प्रचारार्थ त्रितरित कराने के उद्देश्य से प्रकाशित कराने का भव्य यू०पी० रोलिंग मिल एवं छद्दामल त्रिलोकीनाथ आदि व्यापारिक प्रतिष्ठानों के संचालन, श्री जैन श्रेताम्बर स्थानरवार्थी सभ, कानपुर के सभापति लाला छद्दामल जैन के कनिष्ठ पुत्र लाला अमरनाथ जैन को है। लाला छद्दामल जी काणपुर नगर के एक संधान्त नागरिक व कुशल व्यवसायी हैं। आपका समूचा परिवार धर्म-सहिष्णुता और उदार मनोवृत्ति के कारण समाज में ममाहृत है। आपके जेष्ठ पुत्र श्री त्रिलोकी नाथ जैन उपर्युक्त मिल के प्रबन्ध निर्देशक व संचालक हैं। पारचात्य मभ्यता एवं सस्कृति से प्रभावित होने पर भी आपकी अपने धर्म में आतरिक आस्था है। धार्मिक अनुष्ठानों में

भी आप यथाशक्य अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। लाला जी के कनिष्ठ पुत्र श्री अमरनाथ जैन, श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक वासी सप्त, फानपुर के वर्तमान प्रधान मंत्री हैं। समाज और धर्म के अभ्युत्थान के लिये आप सदैव बद्धपरिकर प्रस्तुत रहते हैं। निरभिमान, विनम्र एवं मृदुभाषी होने के कारण अपने सम्पर्क में आने वाले को यह प्रनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। परोपकार एवं सत-सेवा में उन का धन से कृत-सरूप रहना आपका स्वभाव है। साहित्य में भी आप अभिरुचि लेते हैं। विगत दिनांक ४-१-६० को श्री जैन स्थानक माता रुक्मणी भवन में 'अहिंसा-दियस' के उपलक्ष्य में फनि श्री के सत्यापधान एवं आचार्य श्री हरिशंकर शर्मा डी० लिट० (आगरा) की अध्यक्षता में आयोजित अद्वितीय विशाल कविसम्मेलन की सफलता का मूलतः श्रेय आप को ही प्राप्त है। आपकी उत्कट लगन अथक परिश्रम एवं उदारता पूर्वक व्यय भार-रहन करने की मामर्थ्य के परिणाम स्वरूप इस सम्मेलन में नगर और बाहर के पचास से अधिक रस-सिद्ध कवियों ने

भाग लेकर पाँच घण्टे से अधिक समय तक काव्यामृत की वर्षा करते हुये श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया था। सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी, इसमें नगर के नवीन एवं प्राचीन दोनों काव्य शैलियों के शीपस्थ कवियों के सम्मिलित होने के अतिरिक्त नगर के छोटी पर के गण्य मान्य विद्वान, साहित्यिक एवं महाविद्यालयों के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक एवं अध्यक्ष-गण श्रोताओं के रूप में उपस्थित थे।

इस प्रकार अपनी धर्मनिष्ठा, कर्तव्य निर्वाह-क्षमता एवं शालीनता के कारण श्री अमरनाथ जी जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज कानपुर के मेरुमणि हैं। इस प्रकार की सुन्दर श्लापनीय कृति के प्रकाशन के कारण आप सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं।

राजकिशोर मिश्र,

अध्यक्ष

भारती-परिषद्

कानपुर।

दिनांक २७-१०-६०

# विषय-सूची



१ — उपक्रम	३
२ — धर्म	६
३ — दर्शन	३६
■ — संस्कृति	३०
५ — उपसंहार	३९



## उपक्रम

### जैन धर्म की प्राचीनता .

मागध के घर्मा में 'जैन धर्म' भी एक अत्यन्त प्राचीन धर्म है। क्योंकि भारत के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में इसने अस्तित्व का उल्लेख उपलब्ध है। जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन का कुछ वर्णन ऋग्वेद में, भागवत में तथा अन्य पुराणों में मिलना है। तीर्थंकर तीर्थंकर पारशनाथ का वर्णन बौद्ध पिटकों में किया गया है। पारशनाथ के चार नाम सधर का स्पष्ट कथन यहाँ पाया जाता है। इस से इतना तो स्पष्ट है, कि 'जैन धर्म' वैदिक धर्म से तथा बौद्ध धर्म से सर्वथा भिन्न है। उसका अपना धर्म है, अपना दर्शन है, अपना इतिहास है, और अपनी एक मरुति है। भारत के उत्थान में, भारत के विकास में तथा भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में उसका भी उत्तम ही महान् योगदान रहा है,

जितना कि धन्य किसी धर्म एवं मस्कृति का हो सकता है। जैनधर्म ने यदि अपने पड़ोसी धर्मों से कुछ विचार सस्कार लिये हैं, तो उसने उनको बहुत कुछ दिया भी है।

**जैन की परिभाषा :**

‘जैन’ शब्द ‘जिन’ शब्द से निकला है। अतः ‘जैन’ को समझने से पूर्व ‘जिन’ को समझना आवश्यक है। ‘जिन’ शब्द का अर्थ है, विजेता। जैन संस्कृति विजय की संस्कृति है, पराजय की नहीं। विजय क्या है? उसके साधन क्या हैं? और विजेता कौन हो सकता है? जैन धर्म और जैन संस्कृति, एक तीनों प्रश्नों का सुन्दर समाधान करती है, कि अपने मनोविकारों को जीतना सही विजय है, अहिंसा और सत्य उसके साधन हैं, तथा प्रेम से द्वेष पर और समता भाव से राग पर विजय पाने वाला ही विजेता है। अतः राग एवं द्वेष का विजेता ‘जिन’ है, और जिन की उपासना करने वाला जैन है। ‘जिन’ को ‘अरि-हन्त’ भी कहते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ

रूप अरि का हता 'अरिहन्त' कहा जाता है। जिन भाषित धर्म और सस्कृति को जैन धर्म एवं जैन सस्कृति कहते हैं।

### केन्द्रीय विचार :

जैन धर्म और जैन सस्कृति की व्याख्या बहुत विस्तृत एवं बहुत गम्भीर है। वह सब तो उसके विशाल साहित्य के अध्ययन से ही जाना जा सकेगा। परन्तु जैन परम्परा का केन्द्रीय विचार है—“अहिंसा और अनेकान्त।” अहिंसा आचार पत्र है, और अनेकान्त विचार पत्र, अहिंसा धर्म है, और अनेकान्त दर्शन। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्त, यह जैन धर्म का सर्वोच्च सिद्धान्त है, मूलभूत सिद्धान्त है।

जैन धर्म एक धर्म है, एक दर्शन है, एक सस्कृति है, जीवन की एक विशिष्ट पद्धति है और एक अध्यात्म धर्म है।

जैन धर्म के अनेक स्वरूप हैं। वह विश्व कल्पना के समान महान और जीवन की भाँति विशाल है,



उसके सन रूप भगवान् महावीर के उपदेशों पर आधारित है।

जैन धर्म आत्म सत्कार का धर्म है। महावीर तो फेयल शास्त्रा ह, मार्ग-दर्शक ह। मनुष्य को अपनी मुक्ति स्वयं की साधना से पानी है। वह अपना प्रकाश स्वयं है।

जैन धर्म विरति और वियेक पर खड़ा है। सत्य और प्रकाश पर उमका विशेष बल है। इसलिये अन्ध-धिरवाम और बौद्धिक मोह को यहाँ कोई स्थान नहीं है।

जैन धर्म के नाम पर उसके विराल इतिहास में एक भी व्यक्ति को पीड़ित नहीं किया गया। अतः जैन धर्म उदारता, महिष्णुता और निरन प्रेम का धर्म है।

सामाजिक निर्माण में समता का प्रसार सर्व प्रथम जैन धर्म ने ही किया है, उसके समन्वयात्मक बुद्धिवाद ने समाज सुधारकों को प्रेरणा दी है और भारतीय इतिहास में मानवतावादी युग लाने का श्रेय भगवान् महावीर को ही है।

राजनीतिक क्षेत्र में जैन धर्म ने सम्राट् श्रेणिक, सम्राट् कृणिक, चन्द्रगुप्त मौर्य, कार्वेल और सम्राट् कुमारपाल जैसे शासकों को पैदा किया। इनके राज्य में हिंसा का आर्थिक अथवा सामाजिक शोषण नहीं किया।

मन्युष्य, मानव्य और कला के क्षेत्र में जैन धर्म की अभूतपूर्व देन है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी, कि जैन धर्म हर पहलू में विश्व का एक महान धर्म है।

जैन धर्म मनुष्य की उच्चतम नैतिक धेतना का प्रतीक है, और मानव जीवन की गहन समस्याओं का समाधान उसमें विद्यमान है, उसने जीवन की ग्लानियों को सुन्नमाने का प्रयत्न किया है।

जैन धर्म मानव को असत्य से सत्य की ओर, अधकार से प्रकार की ओर, सभार से मुक्ति की ओर और भोग से योग की ओर ले जाता है। वह अहिंसा, अनेकान्त तथा अपरिग्रह की ससृष्टि का प्रसार करता है।

## धर्म

भाषना विशुद्धि :

धर्म साधना का एक—मात्र उद्देश्य है, भाषना विशुद्धि। मन की मलिन भाषना से मनुष्य का पतन होता है, और विमल भाषना से उत्थान। जब तक ससार में मनुष्य जाति की सत्ता है, तब तक उसके अभ्युत्थान के लिये धर्म की आवश्यकता भी रहेगी। जीव-जगत में मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ पर श्रेष्ठ अर्थ कोई नहीं है। परन्तु प्रश्न सबसे बड़ा यह है, कि मानव की श्रेष्ठता तथा ज्येष्ठता का आधार क्या ? उसकी आकृति अथवा उसकी प्रकृति। निश्चय ही उसकी महानता का आधार आकृति नहीं, उसका प्रकृति है। भ्रूण प्यास लगने पर खा-पी लेना, थकने पर सो जाना, अपने जीवन को सुरक्षित रखने की चिन्ता और वासना की तृप्ति का प्रयत्न—ये चार बातें मनुष्य के समान पशु में भी हैं। फिर भी मनुष्य, मनुष्य है और पशु, पशु है।

इस भेद-रेखा का आधार अग्रथ्य होना चाहिये। वह है—धर्म। धर्म की अभिव्यक्ति मानव म ही परिलक्षित होती है। धर्म कोई बाहर की वस्तु नहीं है, जिसको बाहर से भीतर ढाला जाए। वह तो मनुष्य की अपनी शुद्ध चेतना का ही नाम है। अतः भावना विशुद्धि ही तो धर्म है। धर्म शब्द के दो अर्थ हैं—स्वभाव और आचार। अपना स्वभाव तो प्रायेक वस्तु में रहता ही है—जैसे अग्नि में उष्णता, मनुष्य में मनुष्यता—परन्तु जीवन-शोधन के लिये आचार एक परम तत्त्व है। सब धर्मों में आचार पहला धर्म है। आचार एक जीवन-तत्त्व है, जो व्यक्ति में, समाज में, राष्ट्र में और विश्व में व्याप्त है। जिस शक्ति से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का मङ्गल होता है, वही धर्म है। यह धर्म तीन प्रकार का है—अहिंसा, सत्य और तप।

**अहिंसा : मानव का मूल धर्म :**

“अहिंसा परमो

धर्म” जैन सस्कृति का यह एक पवित्र और प्राण-भूत तत्त्व है। भ्रमण सस्कृति में यदि कोई स्वर्णमूत्र

है, तो वह यह है—“जीवो और जीने नो ।” जैन धर्म का इतिहास एक प्रकार से अहिंसा के विविध प्रयोगों का इतिहास है । अहिंसा का अर्थ है—“विचार में, आचार से और उचार में किसी भी व्यक्ति के प्रति अस्वभाव्य की भावना न रखना, समार के साथ जीव सुखी रहें, साथ ही स्वस्थ रहें, उसके जीवन का फल्याण हो, और मृत्यु में कोई जीव दुर्ग न हो ।” इस प्रकार की भावना को अहिंसा कहा गया है । इसके मुख्य में अपना सुर्य समझना, यही तो अहिंसा है, यही तो परम धर्म है । मनुष्य दो कारणों से हिंसा करता है—रक्षण के लिये और भक्षण के लिये । जब गृहस्थ अपने परिवार समाज और राष्ट्र के रक्षण के लिये प्रयत्न करता है, तो उसमें हिंसा भी हो जाती है । परन्तु वह रक्षण की हिंसा है । गृहस्थ में स्वरक्षण की शक्ति होनी ही चाहिये । परन्तु भक्षण के लिये, अपने खाद के लिये पशुओं की एवं पक्षियों की जो हिंसा की जाती है, वह तो स्पष्ट ही अशुभ है । एक तीसरे प्रकार की हिंसा भी प्राचीन भारत में

प्रचलित थी-धर्म के लिये अर्थात् यज्ञ के लिये । स्वर्ग के देवा को प्रसन्न करने के लिये पशु-पक्षियों को तथा मनुष्यों को भी यज्ञ-कुण्ड की ज्वालाओं में भोंक दिया जाता था । धर्म के नाम पर होने वाली यह हिंसा, अन्य हिंसाओं से अधिक भयङ्कर थी । जैन मन्त्रि के धर्म शास्त्राओं ने—तीर्थंकरों ने तथा गणधरों ने—मामाहार और हिंसा-प्रधान यज्ञों का दृढ़ विरोध किया था । फलतः मनुष्य समाज हिंसा से धीरे-धीरे अहिंसा की ओर अग्रसर होता रहा है । क्योंकि अहिंसा आत्मा का स्वभाव है, और हिंसा विभाव । अहिंसा के अग्र आधार हैं—स्नेह, सहानुभूति और महिष्णुता । जबकि हिंसा के आधार हैं—द्वेष, घृणा और ईर्ष्या । मनुष्य जब अपने में दृष्ट हो जाता है, तब उसमें से हिंसा फूट निकलती है । किंतु ज्यों-ज्यों वह विराट होता जाता है, त्यों-त्यों उसमें से प्रेम, दया, करुणा और सेवा के भाव प्रकटित होते हैं । समाज, राष्ट्र और विश्व के सारक्षण के लिये अहिंसा का विकास आवश्यक है ।

को स्वस्थ, सुन्दर गगन सुगन्ध बनाने के लिये समय की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि बिना समय के उत्कृष्ट कर्म, सत्कर्म नहीं किये जा सकते। समय जैन सभ्यता की भव्य आत्मा है। जैन सभ्यता का मूल आधार ही शुद्ध आचार है। समय में सौन्दर्य है, शौर्य है और अद्भुत सामर्थ्य है।

**समय के प्रकार :**

संसार में अनेक प्रकार के पाप हैं, परन्तु मुख्य रूप में पाँच पाप हैं, जिनमें अन्य सभी प्रकार के पापों का समावेश किया जा सकता है। ये पाप ये हैं— हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह। उक्त पापों के आचरण से आत्मा का पतन हो जाता है। मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है। इनको पाँच आश्रय भी कहते हैं। इसके विपरीत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पाँच धर्म हैं, समय हैं, सधर हैं, आचार हैं। इनकी साधना से मनुष्य जीवन का कल्याण होता है, उत्थान होता है। इनको पाँच भवर भी कहते हैं। पञ्च आश्रय संसार

के कारण हैं, और पञ्च संवर मोक्ष के कारण। युद्ध भोग-प्रिय लोग मयम को धन्धन कहते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है, क्योंकि मयम धन्धन नहीं, एक नियंत्रण है, जिसको साधक अपनी इच्छा से स्वीकार करता है।

**संस्कृति का मूल बीज : तप :**

संस्कृति का मूल बीज तप है। अहिंसा की साधना के लिये मयम आवश्यक है, और मयम की सुरक्षा के लिये तप। तप की साधना करने वाला अहिंसा और मयम की साधना करेगा ही। तप क्या है? यह आत्मा का एक तेज है। आत्मा का दिव्य प्रकाश है। तप का अर्थ न भूये मरना है, और न शरीर को सुगा डालना ही। तप का वास्तविक भाव है, अपनी वासनाओं का वमन। बिना तप के जीवन उर्बर नहीं बन सकता। वासना वासित जीवन धर्म की आराधना में सप्रथा असफल प्रमाणित होता है। वस्तुतः तपोहीन जीवन धर्म को धारण नहीं कर सकता। अतः तप जीवन शोधन का एक विशेष तत्व



है। षष्ठ सहिष्णुता, मनोनिग्रह और वामना दमन ही वस्तुतः तप है। उपवास लिया है, व्रत लिया है, अन्न एवं जल का त्याग कर दिया है, फिर भी मन में वषाय भावना और विषय लालसा धनी रहती है, तो वह व्रत नहीं, एक प्रकार का लपट है, जो किसी से धाभ्य होकर किया जाता है। विना भावना के और विना विवेक के किया तप, केवल देह दमन है।

**तप का शुद्ध स्वरूप :**

तप आत्मा के विकारों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। अतः तप का सम्यन्ध आत्मा और मन से है। देह से बहुत कम। "तपो धर्मस्य हृदयमहा" तप को कर्म का हृदय कहा गया है, मार कहा गया है। तप क्या है? इसने उत्तर में कहा गया है, कि "कर्मणा तापनात् तप"। जिस प्रकार तपाने पर सुखर्ष की मिट्टी सुखर्ष से दूर कर दी जाती है, वही प्रकार तप से आत्मा के कर्मों को विकारों को दूर किया जाता है। कर्मों का तापन जिससे हो, वही तप है।

तप का साधना करने वालों को यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है, कि तप उतना ही करना चाहिये, जिससे मन में समाधि भाव धना रहे। शक्ति न होने पर भी जो तप प्रशमा पाने के लिये किया जाता है, वह सच्चा तप नहीं। तप के दो रूप हैं—थास्य और आभ्यन्तर। जीवन शुद्धि के लिये दोनों प्रकार के तपों की आवश्यकता है, मानसिक तप की भी, और शारीरिक तप की भी।

---

# दर्शन

आत्म राट \*

समस्त दर्शन-शास्त्रों का मूल-तत्त्व है—आत्मा । एक चार्वाक की छोड़कर भारत के शेष समस्त दर्शन आत्मा की मत्ता में विश्वास रखते हैं । भले ही आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में वे एक मत न हो सके हो, परन्तु जड़, पुद्गल, कर्म, माया, प्रकृति और धामना से भिन्न भी एक चेतन तत्त्व है, इस विषय में किसी प्रकार का विवाद नहीं है । आत्मा की मत्ता स्वीकार करने पर ही कर्म, लोभ परलोक, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक और मोक्ष की चर्चा साधक हो सकती है । आत्मा है, तो ये सब भी हैं । नहीं तो, नहीं । जैन धर्म, जैन-दर्शन और जैन सस्कृति आत्मा की शाश्वत मत्ता में पूर्ण श्रद्धा एवं पूर्ण विश्वास करते हैं । जैन दर्शन के अनुसार आत्मा का स्वरूप बक्षेप में इस प्रकार है ।

## आत्मा का स्वरूप :

आत्मा एक चेतन तत्त्व है, जो मग्न अनन्द, अमर, तथा शाश्वत है। जिसका न कभी जन्म होता है, और न कभी मरण। जन्म, जरा और मरण ये शरीर के धर्म हैं। अतः शरीर में होते हैं, आत्मा में नहीं। आत्मा न शस्त्र से फटता है, न आग में जलता है, न घूष में सूखता है और न पानी में गलता है।

आत्मा ज्ञान रूप है। प्रत्येक वस्तु को देखना, जानना, आत्मा का ही धर्म है, जड़ का नहीं। जब तक आत्मा शरीर में है, तभी तक मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर काम करते हैं। अतः जैन दर्शन आत्मा को ज्ञान-स्वरूप कहता है।

आत्मा अमूर्त है। उसमें न रूप है, न रस है, न गन्ध है, और न स्पर्श ही। क्योंकि ये मन पुद्गल के धर्म हैं। आत्मा के धर्म तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य हैं। आत्मा को इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। आत्मा तो अनुभूति का विषय है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा एक नहीं, अनन्त है। क्योंकि आत्माओं का कभी मर्ग्यता की दृष्टि से अन्त नहीं होता, अतः वे अनन्त हैं। संसार में प्रत्येक जीव की दशा एक जैसी नहीं है। कोई सुखी है, कोई दुखी है। कोई विद्वान् है, कोई मूर्ख है। कोई रोगी है, कोई स्वस्थ है। जीव की ये विभिन्न दशाएँ प्रमाणित करती हैं, कि आत्मा एक नहीं, अनन्त है। और, प्रत्येक आत्मा अपने स्वरूप में सर्वथा स्वतन्त्र है।

**आत्मा के प्रकार :**

शास्त्रकारों ने आत्माओं को दो विभागों में बाँट दिया है—संसारी और मुक्त। जीवों में जब तक राग, द्वेष और मोह है, तब तक वे संसारी हैं। संसारी ज्ञान में कर्म-मल लगा रहता है। कर्म-मल से मुक्त आत्माओं को सिद्ध कहते हैं। चार गति—नरक गति, तिर्यक्ष्णगति, मनुष्यगति, देवगति—तथा, त्रस और स्यावर—ये सब भेद संसारी जीवों के हैं। मुक्त अवस्था में आत्माओं में किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। एक

थार एक आत्मा जब अपने सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्-चारित्र्य की साधना से मुक्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है, तब फिर वह कभी सत्तार में नहीं आता । अनन्त काल के लिये सिद्ध हो जाता है ।

**कर्म घाट :**

सत्तारी आत्मा अनादिकाल से कर्म परम्परा में पड़ा हुआ है । पुराने कर्मों के योग से नये कर्मों के बन्ध से जीव नाना-योनियों में और नानाव्यक्तियों में परिध्रमण करता है । प्रतिक्षण आत्मा अपने पूरकृत कर्मों को भोगता हुआ नवीन कर्मों का उपाजन करता रहता है । अतः जन्म और मरण की परम्परा अनन्तकाल से चली आ रही है । जीव अनादिकाल से कर्मवश होकर विविध भवों में भ्रमण कर रहा है । जन्म और मरण का मूल, कर्म है । जीव अपने शुभ तथा अशुभ कर्मों के साथ पर-भव में जाता है । जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल पाता है ।

## कर्म की परिभाषा :

‘कर्म’ शब्द का अर्थ साधारण भाषा में कार्य, किया अथवा प्रवृत्ति किया जाता है। वेदों में यज्ञ क्रिया को कर्म कहा है। पुराणों में धर्म नियमों को कर्म कहा है। गीता में कर्त्तव्य को कर्म की संज्ञा दी गई है। परन्तु जैन दर्शन में कर्म एक वह तत्त्व है, जो आत्मा के ज्ञान आदि निज गुणों पर आचरण रूप होता है, और वह आत्मा से भिन्न एक विशेष प्रकार का पुद्गल तत्त्व है। कर्म, आत्मा की आचरण शक्ति है।

## कर्म के भेद :

जैन दर्शन में कर्म के दो भेद हैं— द्रव्य कर्म और भाव कर्म। कार्मण जाति का पुद्गल अर्थात् जड़ तत्त्व, जो कि आत्मा के साथ मिलकर कर्म के रूप में परिणत होता है, वह द्रव्य कर्म कहलाता है, और राग-द्वेषात्मक परिणाम को भाव कर्म कहते हैं।

## कर्मबन्ध के कारण :

जैन दर्शन में कर्म बन्ध के दो कारण मुख्य रूप में माने गये हैं—योग और कपाय । शरीर, वाणी और मन की क्रिया को योग कहते हैं । क्रोध, मान, भाया और लोभ को कपाय कहते हैं । कपाय की तीव्रता एवं मन्दता से ही कर्म के फल में तीव्रता और मन्दता पैदा होती है । जब तक कपायों का जय नहीं होगा, तब तक कर्मों का बन्ध होता ही रहेगा और आत्मा की संसारी अवस्था का अन्त नहीं होगा ।

## अष्ट कर्म :

जैन दर्शन में कर्म की मूल प्रकृति आठ हैं । ये प्रकृतियाँ ही जीव को अनुकूल एवं प्रतिकूल फल देती हैं । वे ये हैं—

- |   |           |   |         |
|---|-----------|---|---------|
| १ | ज्ञानावरण | ५ | आयुष्य  |
| २ | दर्शनावरण | ६ | नाम     |
| ३ | वेदनीय    | ७ | गोत्र   |
| ४ | मोहनीय    | ८ | अन्तराय |



ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय ये चार घाती कर्म कहे जाते हैं, क्योंकि ये चार आत्मा के चार मूल गुणों का—ज्ञान, दर्शन, सुगम और धैर्य का—घात करते हैं। शेष चार अघाती कर्म हैं, क्योंकि ये आत्मा के किसी भी निज गुण का घात नहीं करते।

**कर्मों का फल :**

ज्ञानावरण कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का, दर्शनावरण आत्मा के दर्शन गुण का, मोहनीय आत्मा के श्रद्धा एवं चारित्र्य गुण का और अन्तराय आत्मा के धैर्य-गुण का (आत्म शक्ति का) घात करता है। वेदनीय सुगम दुःख का अनुभव कराता है। आयुष्य से नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य पथ वेव भवों की प्राप्ति होती है। नाम से शरीर, इन्द्रिय, जाति और गति आदि प्राप्त होते हैं। गोत्र से जीवों की उन्नत्य एवं नीचत्य मिलता है।

**कर्म क्षय के कारण :**

राग, द्वेष और मोह को जीतने से और चार कर्माणों का क्षय करने से

आत्मा अपने समस्त कर्मों का नाश करके निद्ध, बुद्ध, मुक्त और परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक आत्मा उक्त विकारों का उन्मूलन करके समारी से मुक्त बन सकता है।

**अनेकान्तवाद :**

जैन दर्शन की आधारशिला है,— अनेकान्तवाद। जैन दर्शन एक वस्तु में अनन्त धर्म स्वीकार करता है। इन धर्मों में से व्यक्ति अपने अभीष्ट धर्मों का समय-समय पर चयन करता है। वस्तु के जितने धर्मों का चयन हो सकता है, वे समस्त धर्म उस वस्तु में रहते हैं। अनन्त अथवा अनेक धर्मों के कारण ही वस्तु को, पदार्थ को जैन दर्शन में अनन्त धर्मात्मक क्रिया अनन्त धर्मात्मक कहा जाता है। अनेकान्तवाद को स्याद्वाद एवं अपेक्षावाद भी कहते हैं। 'स्यात्' शब्द का अर्थ है—'कश्चित्' और वाद का अर्थ है—'कथन'। 'स्यात्' पूर्वक जो 'प्याट' है, अर्थात् वचन क्रिया कथन है, वह स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद तो एक दृष्टि है, एक विचार है, और उस विचार को

अभि-वक्त करने की जो भाषा-पद्धति है—उसी को चम्बुन स्याद्वाद कहा गया है। अपेक्षावाद का अर्थ है—“प्रत्येक वस्तु का भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना।” सरंधा एक ही दृष्टिकोण से चम्बुन के अस्तित्व बन करने की पद्धति को जैन दर्शन में अपूर्ण और सन्तोष माना गया है। अतः प्रत्येक वस्तु को एक दृष्टिकोण से न देखकर अनेक दृष्टिकोणों से देखने को ही चम्बुन जैन दर्शन में अपेक्षावाद कहते हैं। इतना अन्तर होने पर भी स्याद्वाद और अपेक्षावाद—अनेकान्तवाद के नामान्तर ही हैं।

### अनेकान्तवाद का स्वरूप :

अनेकान्तवाद केवल एक दार्शनिक सिद्धान्त ही नहीं है, बल्कि जीवन के क्षेत्र में एक समन्वय मूलक सधुर प्रयोग भी है, जो विचारों के द्वन्द्वों को साफ करता है। विचार और व्यवहार जीवन के दोनों क्षेत्रों में इस सिद्धान्त की समान भाव से प्रतिष्ठा है। अनेकान्तवाद क्या है ? और उसका मानव जीवन में क्या उप-

योग है ? उक्त प्रश्न के समाधान में कहा गया है, कि वस्तु को एकमात्र विचार से न देखकर, अनेकान्गी विचार से देखना चाहिये । वस्तु स्वरूप के कथन में 'ही' का प्रयोग न करके 'भी' का प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि अपेक्षा भेद से एक ही वस्तु अनेक रूप हो सकती है । एक आचार्य ने अनेकान्तवाद का स्वरूप बताते हुये अपने शिष्य को समझाने के लिये, एक बड़ा सुन्दर रूपक दिया है, जो इस प्रकार है —

आचार्य ने अपनी सुराम बुद्धि से स्थूल जगत् के माध्यम से अनेकान्त ण्य स्याद्वाद की व्याख्या प्रारम्भ की । आचार्य ने अपना एक हाथ लक्ष्मण किरा और कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियों को शिष्य के सम्मुख करते आचार्य ने पूछा—“दोनों में छोटी कौन और बड़ी कौन ?” शिष्य ने कहा—“कनिष्ठा छोटी और अनामिका बड़ी ।” आचार्य ने कनिष्ठा को समेट ली और माध्यमों को प्रसारित करके पूछा—“धोतों, तो अय, कौन छोटी, कौन बड़ी ?” शिष्य ने कहा—

“अथ तो अनामिका छोटी है, और मध्यमा पट्टी ।” आचार्य ने कहा—“धर्म, यही तो स्याद्वाद, अनेकान्तवाद और अपेक्षावाद है। अपेक्षा भेद से जैसे एक ही अंगुली कभी बड़ी और कभी छोटी हो सकती है, वैसे ही अनेक धर्मात्मक एक ही धस्तु में कभी किन्हीं धर्मों की मुख्यता रहती है, जो कभी उसी धर्म को गौणता हो सकती है। जैसे आत्मा यह नित्य भी है, अनित्य भी। द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, और पर्याय की अपेक्षा अनित्य भी है।

**उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य :**

जैन दर्शन के अनु-

सार प्रत्येक धस्तु उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य धर्मों से युक्त है। धस्तु में उत्पत्ति भी होती है, विनाश भी होता है और स्थिति भी होती है। एक स्वर्ण-कार के पास स्वर्ण का कङ्कन है, वह उसे गलान्तर हार बना लेता है। यहाँ पर कङ्कन का नाश होकर हार का उत्पाद होगया है। फिर भी स्वर्ण-द्रव्य तो व्यों का त्यों है—कङ्कन में भी और हार में भी, यह स्थिति है। विनाश और उत्पत्ति केवल

आकार की हुई है, वस्तु वैसी की वैसी है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये।

**नयवाद और प्रमाणवाद :**

जैन दर्शन के अनुसार वस्तु को जानने के दो उपाय हैं—नय और प्रमाण। अनेक धर्मात्मक वस्तु के किसी एक अशक्य ज्ञान जिससे ही, वह ज्ञान 'नय' कहा जाता है, और वस्तु के अनेक अश्यों को ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है। जैसे आम्र फल है। उसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श सभा है। रूप मुखेन, रस-मुखेन, गन्धमुखेन और स्पर्शमुखेन आम्र का जो ज्ञान है, वह तो नय है, तथा आम्र मुखेन जो ज्ञान है, वह प्रमाण है। अनेकान्तवाद को समझने के लिये नयों का ज्ञान आवश्यक है।

**नयों का स्वरूप :**

मुख्य रूप में नय दो हैं—द्रव्य नय और पर्याय नय। जिस दृष्टि में द्रव्य मुख्य

है और पर्याय गौण है—यह द्रव्य नय है, जिम दृष्टि में पर्याय मुख्य है, और द्रव्य गौण है—यह पर्याय नय है। द्रव्य नय के चार भेद हैं—जैगम, समष्ट, व्यवहार और ऋजुमूर्त्त। पर्याय नय के तीन भेद हैं—शब्द, समभिरुद्ध और ऽयमूर्त्त। प्रथम के चार भेदों में पर्याय दृष्टि की गौणता और द्रव्य दृष्टि की मुख्यता होने से द्रव्यार्थिक नय है, तथा अन्त के तीन भेदों में द्रव्य दृष्टि की गौणता और पर्याय दृष्टि की मुख्यता होने से पर्यायार्थिक नय है। नयों का विषय अत्यन्त गम्भीर है। अतः संक्षेप में वर्णन किया गया है।

**प्रमाण का स्वरूप :**

धम्तु के निरचयात्मक ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण दो हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं—अवधि-ज्ञान, मा पर्याय-ज्ञान और केवल-ज्ञान। परोक्ष के दो भेद हैं—मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान।

**द्रव्य, गुण और पर्याय :**

१. द्रव्य का अर्थ है—वस्तु, पदार्थ और तत्त्व।

प्रत्येक वस्तु में दो धर्म मुख्य हैं—गुण और पर्याय ।  
 महमारी धर्म को गुण कहते हैं और क्रमभावी  
 धर्म को पर्याय कहते हैं । गुण सहभावी धर्म है और  
 पर्याय क्रम भावी धर्म है ।

**अनेकान्त के व्याख्याकार :**

अनेकान्तवाद स्याद्वादा  
 और अपेक्षावाद के मूल धाँज आगमों में यत्र-तत्र  
 निगरे पडे हैं । परन्तु उसके व्यवस्थित एवं तर्क  
 संगत व्याख्याकारों में आचार्य सिद्धसेन द्वाराकर  
 आचार्य समन्नमद्र, हरिभद्र अरुलर और यशो  
 विनय आदि मुख्य हैं । इन्होंने स्याद्वाद एवं  
 अनेकान्तवाद को विराट रूप दिया । उसकी मूल  
 दृष्टि को अंकुशित, पल्लवित, पुष्पित और फलित  
 किया । उसकी युग स्पर्शी व्याख्या करके उसे मानव  
 जीवन का एक उपयोगी सिद्धान्त बना दिया ।



# संस्कृति

जैन संस्कृति हृदय और बुद्धि के स्वस्थ समन्वय से मानव जीवन को सग्न, सुन्दर और सधुर बनाने का दिव्य सन्देश देती है। विचार में आचार और आचार में विचार जैन संस्कृति का मूल भूत सिद्धान्त है। जैन संस्कृति का सीधा मरल अर्थ है—जीवन की उर्वर भूमि में स्नेह, सहानुभूति, सहिष्णुता के बीजों का बपन करना। यह संस्कृति विशाल है, विराट है और व्यापक है। परन्तु यहाँ जैन संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों का संक्षेप में परिचय देने का प्रयत्न होगा।

**समन्वय भावना :**

जैन संस्कृति का रूप सदा से समन्वयात्मक एवं व्यापक रहा है। उसका भव्य द्वार सबके लिये खुला रहा है। इस व्यापक तथा विशाल दृष्टिकोण का मूल ज्यसांख्यिक भावना और जातिवाद का अभाव है। जैनत्व क्या है ?

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की साधना। उक्त साधना करने वाला किसी भी देश का हो, किसी भी जाति का हो, किसी भी मत पन्थ का हो, वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है। नपनाह और स्याद्वाद के द्वारा विभिन्न विचारों में समन्वय विस्थापित करने का सफल प्रयास जैन संस्कृति ने किया है।

### गुण पूजा :

जैन संस्कृति में व्यक्ति के गुणों का आदर होता है, भात्र व्यक्ति का नहीं। जिसमें त्याग, तपस्या, सयम तथा सदाचार आदि गुण हैं, वह पूज्य है। भले ही वह किसी जाति का हो। भले ही वह नर या नारी कोई भी क्यों न हो ? पूजा का आधार जाति एव जन्म नहीं, परंतु व्यक्ति के सत्कर्म तथा सदगुण हैं। इसी आधार पर जैन संस्कृति के मूल मन्त्र पञ्च परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है, किसी व्यक्ति विशेष को नहीं। पूरा मन्त्र इस प्रकार है —

नमो अरिहताय — नमस्कार हो, अरिहत्तों को  
 नमो सिद्धाय — नमस्कार हो, सिद्धों को  
 नमो आचरियाय — नमस्कार हो, आचार्यों को  
 नमो उपज्जायाय — नमस्कार हो, उपाध्यायों को  
 नमो लोच मन्वसाट्टाय — नमस्कार हो, लोक के  
 सर्व साधुओं को ।

**समतावाद :**

समता का अर्थ है—सबको बराबर मानना ।  
 न किसी के प्रति राग, न किसी के प्रति द्वेष ।  
 जैन मरुति में किसी भी प्रकार के विषम भाव को  
 स्थान नहीं है । यहाँ मनुष्य ही नहीं, सभी जीवों  
 को जीवित रहने और अपना विकास करने का  
 सहज अधिकार प्राप्त है । जन्म से न कोई शूद्र  
 है और न कोई ब्राह्मण । कम से ही शूद्र होता है,  
 कर्म से ही ब्राह्मण भी । हरिकेशी मुनि जन्म से  
 बालकाल होकर भी मद्गुणों से बत सभी का  
 पूज्य था । अतः जातिगत, देशगत और वर्णगत  
 उच्चता-नीचता में जैन मरुति का विश्वास  
 नहीं है ।

## नारी जीवन का संस्कार :

समाज में नारी जीवन का सना अपमान ही होता रहा है। समाज में, धर्म में और राजनीति में नारी को वे अधिकार नहीं थे, जो एक पुरुष को हो सकते थे। नारी भी इतिहासों का तरह अपमान की वस्तु बन गई थी। परन्तु भगवान महापार ने नारी जीवन का भी संस्कार करन को आवाज बुलन्द की। अपन संघ में नारी को लेने का निर्णय उन्होंने किया। फलतः समाज, धर्म और राजनीति में, सबत्र नारी जीवन प्रतिष्ठित होन लगा। यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी, उस युग में। चन्दना और लजन्ती जैसी सैन्यी नारियां न जैन संस्कृति में ही नहीं, अन्य संस्कृतियों में भी गौरव प्राप्त किया था। गांधी-युग में भी नारी ने बहुत उडा गौरव प्राप्त किया है।

## हृदय परिवर्तन :

जैन संस्कृति में वास्तविकता का एक ही अपेक्षा हृदय परिवर्तन पर जोर दिया

गया है। मनुष्य किसी भी देश का हो, किसी बंध का हो, किसी भी जाति का हो, किन्तु यदि उसका हृदय शुद्ध है, निर्मल है, परित्र है, तो वह अपने जीवन का निश्चय ही कल्याण कर सकेगा। यहाँ चरित्र-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जीवन में नैतिक जागरण से ही अध्यात्म जागरण स्थिर रह सकेगा। मनुष्य का हृदय षड-लिप, तो उसका जीवन स्वतः ही बदल जाएगा।

**कला :**

कला का मानव जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है। सस्कृति का एक अंग ही है, कला भी। भले ही कला का धर्म और दर्शन से सीधा सम्बन्ध न रहा हो। परन्तु समाज और सस्कृति से तो इसका सीधा सम्बन्ध रहा ही है। भगवान् ऋषभदेव ने पुरुषों को ७२ और स्त्रियों को ६४ कलाओं का शिक्षण दिया था। इनमें लेख, गणित, संगीत, नृत्य, चित्र, स्थापत्य, शिल्प और वेप भूषा आदि का समावेश हो जाता है। वर्तमान में आन् का

जैन मन्दिर शिल्प एवं स्थापत्य कला का सर्वोच्च नमूना है, जो विश्व का एक आश्चर्य माना जाता है।

**जैन पर्व :**

पर्व, संस्कृति और कला का मिश्रित रूप होता है। प्रत्येक परम्परा के अपने कुछ विशिष्ट पर्व अवश्य होते हैं। जैन संस्कृति में मुख्य रूप में पाँच पर्व माने जाते हैं —

- १ सवत्सरी, पयुपण पर्व, दश लाहणी ।
- २ अक्षय तृतीया ।
- ३ दीपावली, धीर निर्वाण ।
- ४ धीर जयन्ती ।
- ५ पार्व जयन्ती ।

पयुपण-पर्व अध्यात्म-माधना का पर्व है। यह समस्त पर्वों में मुख्य होने से पर्वराज कहा जाता है। यह पर्व भाद्र मास की वदी १० अथवा १३ से लेकर भाद्र मास की सुदी ४ अथवा ५ तक मनाया जाता है। इस में त्याग, तपस्या, स्वाध्याय,

आत्मचिन्तन, ध्यात आदि आत्म-शोधक क्रियाओं की जगहना की जाती है। पशु-पक्षि पर्यं का अन्तिम त्रिस मरुत्सरी कहा जाता है। इस पर्यं में आठ दिन होने से आष्टाह्निक पर्यं भी कहते हैं। वर्ष भर को भूल-चूरी के लिये इस पर्यं में क्षमापना की जाती है। अतः इसको क्षमापना पर्यं भी कहते हैं। निगम्वर परम्परा में भाद्र शुक्ल पंचमी से चतुर्दशी तक करा लक्षण पर्यं मनाया जाता है। अतः इस लक्षण पर्यं कहा जाता है। -

अक्षय तृतीया का सम्बन्ध भगवान् अष्टमदेश से है। भगवान् ने वर्ष भर की तपस्या की थी। त आन्न लिया और न जल ही। वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन भगवान् ने इक्षु-रस से पारणा किया था। अतः जैन मठकृति में यह पर्यं अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी वर्षी तप करने वाले अक्षय तृतीया को इक्षु रस से पारणा करते हैं।

दीपावली का सम्बन्ध भगवान् महावीर के निर्वाण से है। कार्तिक अमावस्या को भगवान् का निर्वाण हुआ था। उस समय पावा पुरी में

देवों ने और शनाथों ने प्रकाश किया था। आज वृषी का अनुकरण हीप जलाकर किया जाता है। अतः इसको वीर-निर्वाण दिवस भी कहा जाता है।

वीर-जयन्ती पर्व भी जैन संस्कृति का एक विशेष पर्व है। इसका सम्बन्ध भगवान् महावीर से है। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भगवान् महावीर का जन्म हुआ था।

पार्श्व-जयन्ती भी जैन संस्कृति का प्रसिद्ध पर्व है। इसका सम्बन्ध भगवान् पार्श्वनाथ से है, जो चैत्र शुक्ल तीर्थंकर थे। काशी में पौष वदी दशमी के दिन भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था।

### शिष्टाचार •

शिष्टाचार भी जैन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। गुरु की विनय करना चाहिए। क्यों कि वह साधना-पथ का मार्गदर्शक है। आचार्य सब को आचार की शिक्षा देता है और उपाध्याय शिक्षण देता है, अतः दोनों की सेवा विनम्र भाव



से करनी चाहिए । अरिहन्त और मिद्ध की अनु-  
 दिन भक्ति करने से जीवन पावन होता है । माता  
 और पिता की सेवा करने में कभी प्रमाद नहीं  
 करना चाहिए । अपने से बड़ों का सदा आदर  
 करो । सध में अशान्ति, क्रोध और घैर भाव पैदा  
 हो, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए । अपने  
 शिष्यों को मधुर भाषा में व्यक्त करो । बड़ों की  
 विनय और छोटों से सदा स्नेह भाव रखो ।  
 जीवन में नैतिकता एवं सभ्यता का सदा पालन  
 करना चाहिये ।

---

# उपसंहार

इतिहास :

जैन धर्म और जैन सस्कृति का इतिहास बहुत प्राचीन है। आज के इतिहासकार महावीर से पूर्व प्रार्यनाथ और नेमिनाथ के युग तक तो जा पहुँचे हैं। परन्तु जैन इतिहास तो उमसे भी बहुत पूर्व अर्थात् ऋषभ युग से प्रारम्भ होता है। जैन धर्म के चौबीस अवतार तथा बारह धन्वर्ती, यह इतिहास की एक लम्बी परम्परा है। भारतीय इतिहास में मौर्यकाल एक प्रकार से जैन काल ही है। क्योंकि सम्राट चन्द्रगुप्त जैन था—आचार्य भद्र बाहु का शिष्य था। कलिंग सम्राट स्वर्धेल जैन था। गुप्त-युग में भी अनेक जैन राजा थे। गुजरात-सम्राट कुमार पाल आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था। मध्य युग में भी अनेक जैन राजा हुये हैं। जैन धर्म का पालन बड़े-बड़े व्यापारी और सेठों ने भी किया है। आनन्द, कामदेव, सुरादेव

और महात्म्य जैसे ऋषिगणति तथा गाथापति भगवान् महावीर के परम-भक्त थे। इनका व्यापार भारत से पाहर विदेशों में भी जल-योगों के माध्यम से होता था। आनन्द श्रावक के ५०० हुना की खेती होता था, और ५० हजार गाएँ थीं। जैन श्रावक पशु पालन भी करते थे, और गेहूँ भी करते थे। जैन इतिहास बहुविध और विस्तृत है। कुछ पृष्ठों में यह जो दिया जा सकता। इसका अति सक्षिप्त परिचय ही यहाँ दिया गया है।

### साहित्य :

जैन साहित्य बहुविध एवं परिमाण में विपुल और विराल है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी, बङ्गाली, मराठी और पन्नड आदि भारतीय भाषाओं में, तथा अंग्रेजी, जर्मनी और फ्रेंच जैसी विदेशी भाषाओं में भी जैन साहित्य उपलब्ध है। विषय विविधता की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुविध है। धर्म, दर्शन, सस्कृति, इतिहास, समाज, नीति, विज्ञान,

ज्योतिष, भूगोल, गगनोल, वैश्विक, काव्य-कला आदि विविध विषयों पर सत्यायक प्रन्थ जैन साहित्य में आज भी उपलब्ध है। मगमान् महावीर का मूल उपदेश अर्ध मागधी भाषा में है। जिसको आगम कहते हैं, अथवा द्वांशागी-बाणी कहते हैं। कालांतर में आचार्यों ने मूल आगमों पर प्राकृत में जो टीकाएँ लिखीं, वे तिसुक्ति, भाष्य, और चूर्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैन साहित्य स्रष्टाओं में आचार्य भद्र बाहु, उमास्वामि, भिद्धसेन त्रिगुण, समन्त भद्र, कुन्द कुन्द, हरिभद्र, हेमचन्द्र और यशोव्रिय जी आदि सुप्रसिद्ध प्राचार्य हुए हैं।

**समान :**

समान आचार और समान विचार वाले मानव समूह का समान कहते हैं। समान के लिये सभ शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। जैन समाज भारत के प्रत्येक प्रान्त में फैला हुआ है। फिर भी वह विशेषरूप में गुजरात में, मालवा

में, मेवाड़ में और मारवाड़ में बहुत बड़ी मठ्या में बसा हुआ है। पञ्जाब और उत्तर प्रदेश में भी जैनों की मठ्या काफी हैं। धामाण में, जैन समाज अधिकार व्यापारी और उद्योगपति है। अन्य व्यवसायों में भी जैनों की सख्या कम नहीं है। शिक्षा-क्षेत्र में, मेवाड़ में और हाफ्टरी में भी इका महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रशासन विभाग में भी अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर जैन कुशलता से काम कर रहे हैं। भारत से बाहर विदेशों में भी जैनों की बहुत बड़ी सख्या रहती है। जैन समाज सभी दृष्टिकोणों से एक विचारशील, प्रगतिशील और उद्योगीय समाज है, जिसमें औसवाल, अमवाल, पल्लीवाल, जायसवाल, लखडेलवाल आदि अनेक वर्ग हैं, अनेक जाति तथा अनेक उपजातियाँ हैं।

**वर्तमान सम्प्रदाय :**

विचार, तत्त्व और निदान्त की दृष्टि से यद्यपि जैन समाज अपने आप में एक है, अपरुड है, तथापि आचार और बाहरी

क्रियाकारणों को लेकर वह अनेक सम्प्रदायों में विभक्त होगया है। मुख्य रूप में दो सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और शिगम्बर। दिगम्बरों में भी अनेक छोटे मोटे वर्ग हैं—जिनका आधार केवल आचार भेद ही है। श्वेताम्बरों में तीन सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, श्वेताम्बर स्थानकधामी और श्वेताम्बर तेरा पन्थ। श्वेताम्बर परम्परा के तीनों सम्प्रदाय के मुनि श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, अतः वे श्वेताम्बर कहे जाने लगे और दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनि नग्न रहते हैं, अतः वे दिगम्बर कहे जाने लगे।

मूल में सब एक हैं :

यह सब भेद और सम्प्रदाय आचार भेद को लेकर खड़े हुये हैं। परन्तु दर्शन-पक्ष में, मस्कृति पक्ष में और सिद्धान्त में, जैन मात्र एक हैं। उनमें औपचारिक भेद है, मौलिक भेद नहीं। नमस्कार-मन्त्र, चौबीस तीर्थंकर, नव तत्त्व, पट्द्रव्य, और अर्धिसा तथा अनेकान्त

निदान्त में जैनों में कुछ भी अन्तर नहीं है, जरा भी भेद नहीं है।

**सप-रचना :**

जैन पराम्परा में समाज के लिये सप शब्द अधिक प्रचलित है। जैन धर्म की सप-रचना व्यवस्थित, नियमित और उदार है। नीयकर ही सप की रचना करते हैं। सप के लिये तीर्थ शब्द का प्रयोग जैन शास्त्रों में विशेष रूप से किया गया है। तीर्थ की स्थापना करने वाला तीर्थंकर कहा जाता है। तीर्थ चार हैं—धमण और अमणी तथा आणक और आणिका। इन को साधु और साध्वी तथा गृहस्थ और गृहस्था भी कहते हैं। इन चारों के समुदाय को तीर्थ, सप अथवा समाज कहते हैं। जैन सप रचना में नारी का उतना ही महत्त्व एवं गौरव है, जितना कि पुरुष का। जैन परम्परा में साधु और गृहस्थ दोनों सप के घटक हैं। सप की श्रुति, सप का हित और सप की सुरक्षा—जैन परम्परा में सर्वोच्च लक्ष्य है।

## श्रमण और श्रमणी :

साधु और साध्वी का जीवन समाज पर आधारित होने पर भी अध्यात्म-प्रधान है। नैतिक शिक्षा, अध्यात्म उपदेश और आत्म-साधना का प्रचार एवं प्रसार करना—इनके जीवन का मुख्य फलज्य है। पञ्चमहाव्रत, पञ्चसमिति और तीन गुण—ये साधु एवं साध्वी के सामान्य नियम हैं, जिनका परिपालन हर साधु और हर साध्वी को करना ही होता है। सर्व प्रकार से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना—ये पञ्च महाव्रत हैं। विषेक में गमन करना, विषेक से प्रिय, मधुर एवं हित वचन बोलना, विषेक से गृहस्था व घरों में भोजन-वानी की गवेषणा करना, विषेक से वस्तु को लेना-देना और विषेक से त्याज्य वस्तु को डालना—ये पंच समिति हैं। मन को अशुभ विचारों से हटाकर शुभ विचारों में लगाना, वचन से कटु-कठोर न बोल कर प्रिय, मधुर एवं हित वचन बोलना तथा शरीर से अशुभ व्यापार न कर के शुभ व्यापार करना—ये तीन गुण हैं।



जैन भिक्षु, मुनि और साधु सदा पैदल चलते हैं, किसी प्रकार की भी सवारी नहीं करते। वे कचन और कामनी के त्यागी होते हैं। मृग पर मुग्न-वस्त्रिका, हाथ में रजोहरण और मोती रखते हैं। सिर भी नगा और पैर भी नगे रहते हैं। गृहस्थों के घर से भिक्षा करके भोजन प्राप्त करते हैं। किसी भी प्रकार का व्यसन वे नहीं रखते हैं।

**भावक और आश्रिका :**

जिस प्रकार भ्रमण और भ्रमणी के नियम समान होते हैं, उसी प्रकार भावक और आश्रिका के नियम समान होते हैं। भावक के बारह व्रत होते हैं—पञ्च अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिवा व्रत। गुणव्रत और शिवाव्रत, उन नियम और उपनियमों की माला हैं, जो पंच अणुव्रतों को सुदृढ़ करने के लिये होते हैं। वे पंच अणुव्रतों के परिपालन में सहायक होते हैं। गृहस्थ जीवन के योग्य ब्रह्म विरोध अपवादों को छोड़कर मर्यादा पूर्वक अहिंसा, मत्स्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य (स्वपत्नी के अतिरिक्त शेष ब्रह्मचर्य) और अपरिमह (गृहस्थ

जीवन की योग्य आवश्यकताओं के अनिश्चित परिमह का त्याग ) से पच अगुणत है ।

रात्रि भोजन का त्याग :

भायक रात्रि-भोजन नहीं करते । रात्रि-भोजन में हिंसा का दोष तो लगता ही है, साथ में स्वास्थ्य को भी बड़ी हानि पहुँचती है । पानी को छानकर पीना चाहिये । भायक बिना छाना पानी कभी नहीं पीता । अष्टमो और चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों के दिन भायक हरी सब्जों नहीं खाता । पर्व दिनों में वह पौष्य और उपवास भी करता है । भायक कभी भी अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करता । एक सप्ताह जैन मास, शकव और अण्डे आदि अभक्ष्य एवं अमास्य पदार्थों का कभी सेवन नहीं करता । परदार-सेवन, घेरया-गमन और शिकार जैसे महापापों से वह सदा दूर रहता है ।

द्वेष, गुरु और धर्म :

राग और द्वेष को जीतने वाले अरिहन्त को वह अपना आराध्य देव

मानता है। पंच महाग्रन्थों के पालन करने वाले आरम-माधक को वह अपना गुरु स्वीकार करता है। दया, करुणा, और सेवा को वह अपना धर्म मानता है।

धारनवित्र रूप में सदा जैत वह है, जिसका सदाचार में विराम है, जो अपने जीवन को स्वच्छ, निर्मल और पवित्र रखने का प्रयत्न करता रहता है। जैत धर्म में जाति और देश का कोई बन्धन नहीं है। केवल जीवन की स्वच्छता और पवित्रता अपेक्षित है। फिर मने ही वह किसी भी जाति का हो, वह सच्चे अर्थों में श्रावण है, जैन है, उपासक है, और महावीर का भक्त है।

## मनक की बच पुस्तक

श्रावक प्रतिश्रमण सूत्र व्याख्या सहित

लघु सामायिक सूत्र            १,    ११

पथीस शील                    ११    ११

मत्स्य का द्वार खुलने ने

लो, पर्ना उठना है

## सम्पादित पुस्तक

नयदाद

अमर भारती

अलोचना पाठ